लोकनाट्य कठपुतली

रूचि शर्मा

मनुष्य का 'लोक 'से अत्यंत घनिष्ठ संबंध होता है और लोकनाट्यों का भी लोकजीवन से गहरा संबंध होता है। 'लोकनाट्य' शब्द 'लोक' और 'नाट्य' दो शब्दों के योग से बना है। 'लोक' की कृति जब नाट्यरूप में संवादों के माध्यम से किसी कथा को प्रस्तुत करे तो उसे 'लोकनाट्य' कहते हैं। नाटक भारत के सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन का अभिन्न अंग रहा है। नाटक लोक जीवन की सुख-दुःखात्मक प्रतिध्वनि है। लोक जीवन की छाया में ही नाट्यकला परिपल्ल वित होती है। डॉ श्याम परमार ने 'लोकनाट्य' की परिभाषा देते हुए लिखा है कि 'लोकनाट्य से तात्पर्य नाटक के उस रूप से है, जिसका संबंध विशिष्ट शिक्षित समाज से भिन्न सर्वसाधारण के जीवन से हो और जो परंपरा से अपने-अपने क्षेत्र के जन समुदाय के मनोरंजन का साधन रहा हो।' इस बात को आगे बढ़ाते हुए डॉ श्याम परमार ने कहा कि "समाज की विकास परंपरा में ऐसे नाट्य रूपों का उद्देश्य मनोरंजन के लिए हुआ, जिसमें सभी वर्गों के लोगों ने हाथ बंटाया। नगरों के उत्थान और राजकीय दरबारों के आकर्षण ने उच्च वर्ग के लिए एक सुसंस्कृत नाट्य परंपरा को मार्ग दिया, जिसने प्रेरणा तो इन्हीं लोकनाट्य से ग्रहण की, परवेश और आत्मा को भूमि की ऊषा से ऊपर उठा लिया। मध्यकाल में जब नागरिकों के मंच का ह्रास हुआ और नाटक समाज के सीमित क्षेत्र में मनोविनोद और विलास का साधन बन गया, तब यही लोक नाट्य परंपरा गांव के जीवन में रस सृष्टि का माध्यम बनी रही। बंगाल, बिहार, उड़ीसा, कुरु, मालवा, राजस्थान, सौराष्ट्र, महाराष्ट्र, आंध्रप्रदेश और सुदूर दक्षिणवर्ती प्रांतों में अपनी-अपनी विशेषताओं से विभूषित लोकनाट्यों का निरंतर जयघोष होता रहा है।[1]

अंग्रेजी के 'फोक' शब्द का प्रयोग अशिक्षित, अर्द्धशिक्षित, असभ्य, अर्द्धसभ्य वर्ग के लिए किया जाता है। डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी अंग्रेजी के 'फोक' शब्द से हिंदी के 'लोक' शब्द का भिन्न अर्थ लगाते हैं। वे लिखते हैं "लोक शब्द का अर्थ जनपद या ग्राम्य नहीं है बल्कि नगरों और गांव में फैली हुई वह समूची जनता है जिनके व्यावहारिक ज्ञान का आधार पोथियाँ नहीं है। ये लोग नगर में परिष्कृत रुचि संपन्न तथा सुसंस्कृत समझे जाने वाले लोगों की अपेक्षा अधिक सरल और अकृत्रिम जीवन के अभ्यस्त होते हैं और परिष्कृत रुचि वाले लोगों की समूची विलासिता और सुकुमारता को जीवित रखने के लिए जो भी वस्तुएँ आवश्यक होती है उनको उत्पन्न करते हैं।[2]

समग्र रूप में 'लोक' शब्द का प्रयोग उस जनसमूह के लिए किया जाता है, जो साज-सज्जा, ऊपरी दिखावा, सभ्यता एवं शिक्षा आदि से दूर आदिम मनोवृत्तियों से युक्त होता है।

लोकनाट्य जनपदीय संस्कृति के महान परिचायक है। इनमें प्राचीन तथा अर्वाचीन दोनों रूप सुरक्षित है। आचार्यों ने काव्यों को दो भागों में बांटा है- श्रव्य काव्य एवं दृश्यकाव्य। जो काव्य केवल सुना जा सके वह

'श्रव्य काव्य' है, जैसे-गद्य, पद्य एवं चंपूकाव्य, इसके तीन भेद माने जाते हैं। वहीं देखे-सुने जाने (दोनों) की क्षमता वाले काव्य 'दृश्य काव्य' है, जैसे रूपक (10 भेद) एवं उपरूपक (18 भेद)- ये दृश्यकाव्य के दो भेद हैं। यद्यपि प्राचीन संस्कृत नाट्य शास्त्र में 'रूपक' शब्द ही अधिक प्रयुक्त हुआ है। रूपक का एक भेद 'नाटक' है। अर्वाचीन संस्कृत साहित्य के इतिहास ग्रंथों में 'नाटक' शब्द ही अधिक दिखाई पड़ता है। इतिहास लेखकों का मत है कि "उस समय भी (मध्यकाल) मुसलमानी प्रभाव से दूर दक्षिण में संस्कृतनाटकों की रचना और अभिनय कला का प्रचार बराबर बना रहा। ऐसे स्थानों में जहाँ मुसलमानी प्रभाव विशेष था, उच्च श्रेणी के नाट्य-साहित्य और अभिनय कला का पतन हो गया। केवल गाँवों में रूपक के कुछ हीन भेदों का प्रचार बना रहा।"[3]

राजस्थान में प्रदर्शन-कला (परफॉर्मिंग आर्ट) और लोकनाट्यों की एक समृद्ध परंपरा रही है। राजस्थान में सामंतवादी काल में राज्याश्रयों में लोकनाट्यों एवं अन्य प्रदर्शन-कलाओं को लगातार पोषण मिला है और वह समृद्ध हुई। उस जमाने का दरबारी माहौल प्रदर्शन- कलाओं के तथा लोकनाट्यों के विकास के लिए अत्यंत अनुकूल था। राजदरबारों में इनके प्रति रुचि होने से विभिन्न राज्यों के सामन्ती वर्ग इन कलाओं से भलीभांति परिचित होते थे जबकि दरबारोन्मुख होने के कारण आमजन को ये कलाएं बहुधा देखने को नहीं मिलती थी, इसलिए आम लोगों में इनके प्रति गहरी रुचि नहीं हो सकी और केवल लोक समाज की पेशेवर जातियों तक ही ये कलाएं सीमित रह गयीं। राजा-महाराजाओं के दैनिक, मासिक, वार्षिक मनोविनोद के लिए होने वाले पेशेवर जातियों द्वारा संपन्न ये लोकनाट्य आमजन देख भी नहीं सकते थे, क्योंकि राजा महाराजा तथा सामन्त इन्हें नीची नजरों से देखते थे। मध्यकाल में यह प्रवृत्ति विशेष रूप से विकसित हो गई और गांवों तक में भी फैल गई। रूढ़ जातिप्रथा के विकसित हो जाने से लोकनाट्य दलित जातियाँ निम्न वर्ग के मनोरंजन का साधन रह गई और यही कारण था कि उच्च वर्ग में, इसी मध्यवर्ती सामंती प्रथा के कारण लोकनाट्यों के प्रति एक हीन भावना पैदा हो गयी। इस तरह लोकनाट्य, आमजन की संपत्ति बना रहा और यही उनकी सामाजिक-सामुदायिक भावनाओं की अभिव्यक्ति का माध्यम भी बना रहा। राजस्थान को लोकनाट्यों के विविध रूपों की दृष्टि से तीन क्षेत्रों में बांटा जा सकता है-

1. उदयपुर, डुंगरपुर, कोटा, झालावाड़ और सिरोही के पर्वतीय क्षेत्र।

2. जोधपुर, बीकानेर, बाड़मेर तथा जैसलमेर के रेगिस्तानी क्षेत्र।

3. राजस्थान का पूर्वांचल, जिसमें शेखावाटी, जयपुर, अलवर, भरतपुर तथा धौलपुर आदि प्रान्त हैं।

प्रथम श्रेणी वाले क्षेत्रों में प्राकृतिक परिवेश तथा प्राकृतिक देवी-देवताओं में इनकी अटूट निष्ठा ही इनके जीवंत नृत्यों, नाट्यों तथा रंगीन परिधान में डूबी सांस्कृतिक अभिव्यक्ति का कारण है। यही उनके नृत्य, नाट्य, संगीत एवं मेले के अवसर पर उत्पन्न होने वाली सामुदायिक भावना का प्रतीक बनकर सामने आती है।

द्वितीय श्रेणी के क्षेत्रों में जनसंख्या बहुत कम है और वहाँ के आमजन को अपनी जीविका निर्वाह के लिए कठिन परिश्रम करना पड़ता है। इन क्षेत्रों में मनोरंजन का कार्य सरगड़ा, नट, निरासी, भाट व भांड नामक

पेशेवर जनजातियों के लोग करते हैं। ये लोग 'स्वांग' लोकनाट्य, को जमाने की नई जरूरतों के मुताबिक ढालकर लोगों का मनोरंजन करने में निपुण होते हैं। ऐसे कार्य प्रायः ये भांडों (लोकनाट्य का प्रचलित प्राचीन रूप) के माध्यम से करते हैं, इनके वार्तालाप पूरी तौर पर व्यंग्य विनोद प्रधान होते हैं और लोगों को हंसा हंसाकर लोटपोट कर देते हैं।

तृतीय श्रेणी में राजस्थान का पूर्वांचल, विशेष तौर पर शेखावाटी का इलाका ख्याल की परंपरागत लोकनाट्य शैली के लिए विख्यात है। ख्याल राजस्थान के लोकनाट्य की सबसे लोकप्रिय विधा भी है। इसको जनता के समक्ष मंचित करने वाली पेशेवर जातियों अथवा नाट्य मंडलियों के लिए कमाई के प्रचुर साधन हैं और इस अंचल में, प्रकृति भी इन नाट्यकर्मियों के प्रति इतनी क्रूर नहीं है, जितनी जैसलमेर, बाड़मेर के रेगिस्तानी इलाकों में हैं। कठपुतली, भाट, कामड़, कच्छीघोड़ी, नर्तक व भोपे आदि लोक नाट्य के विविध रूपों को नियमित रूप से आम जनता के समक्ष प्रस्तुत कर कर अपनी जीविका आसानी से चला रहे हैं। इनको सम्पन्न करने वाली पेशेवर जातियों, समूहों तथा मंडलियों के माध्यम से ही ये लोकनाट्य रूप अपना निरंतर विकास कर रहा है।

राजस्थान में लोकनाट्य के विभिन्न रूप जैसे- ख्याल, कुचामणी ख्याल, शेखावाटी ख्याल, जयपुरी ख्याल, कठपुतली, गवरी, रम्मत, तमाशा, स्वांग, फड़, लीला, नौटंकी, भवाई, भोपा आदि विद्यमान हैं। ये लोकनाट्य इन क्षेत्रों के लोगों के मनोरंजन की आवश्यकता से पैदा हुए हैं और इन्होंने यहाँ के जनजीवन के लोकाचार में अपना विशिष्ट स्थान बना लिया है। उसमें कठपुतली का अपना ही महत्त्व है। कठपुतली का महत्त्व जानने से पूर्व हम राजस्थानी लोक नाट्य की परंपरा और महत्त्व पर विचार करते हैं।

राजस्थानी लोकनाट्य की परंपरा और महत्त्वः

कलात्मक तथा नाटकीय दृष्टियों से राजस्थान अन्य प्रांतों की अपेक्षा अग्रणी रहा है, कारण यह है कि यहाँ के जनजीवन में वीर पूजा की प्रबल भावना के साथ कला, संगीत, नृत्य, अभिनय और काव्य का समन्वय रहा है। जहां राजस्थानी कवि, लेखक और अभिनेता अपने काव्य, संगीत और अभिनय द्वारा गोगा चौहान, बाबूजी राठौड़, पृथ्वीराज चौहान, तेजाजी, अमरसिंह राठौड़, बलजी, भूराजी, दूल्होधाड़ी, दयाराम धाड़ी आदि वीरों के पौरुष के गुण गाते और अभिनय करते हैं, वहाँ दर्शकगण विशेषतः ग्रामीण लोग अभिनय के माध्यम से अपने आदर्श वीरों के रंगमंच पर दर्शन करना चाहते हैं।

राजस्थान की संस्कृति प्राचीन तो है ही जीवंत भी है। राजस्थान में अभिनय, नृत्य, संगीत और रंगमंच की प्राचीन परंपराएं मिलती है। प्राचीन काल से आज तक भी राजस्थान की जनता अपना रंगमंच विकसित करने को प्रयत्नशील रही है। जनजीवन में अनेकों पर्व आते थे, जिनमें राजा से रंक तक भाग लेते थे। "समाज में सभी व्यवसायों के व्यक्ति लोकनाट्यों को बनाए रखने में अपना सहर्ष सहयोग देते थे। राजा धन तथा अमूल्य अप्राप्य सामग्री देकर, व्यापारी रंगमंच के लिए वस्त्रादि देकर, लुहार और बढ़ई आदि

रंगमंच का निर्माण करके, चित्रकार और शिल्पकार सजाव-श्रृंगार द्वारा तथा धनीमानी कलाकारों को स्वादिष्ट भोजन खिलाकर अपना सक्रिय सहयोग प्रदान करते थे और संपूर्ण रात्रि नाट्य प्रदर्शन होते थे।"[4]

यह नाटकीय प्रवृत्ति शहरों की अपेक्षा राजस्थान के ग्राम-निवासियों में विशेष रूप से पाई जाती हैं। वे नृत्य, अभिनय, संगीत के शौकीन होते हैं।

"राजस्थान की अपनी नाट्य परंपरा है। आज भी उन देहातों में जहाँ आधुनिक युग के वैज्ञानिक साधन और सुविधाएं नहीं पहुँच पाई है, सांझ होने पर ढोलक पर थाप पड़ती है, मंजीरा झन्कार उठता है और मशालों के आलोक में ग्रामीणों का अभिनेता गा उठता है- 'आयो-आयो रे हरकारो राजा गोपीचन्द रो।' रंग जमता है, सरस कंठ से मधुर आलाप, रंग बिरंगे कपड़े, सुनहरे जेवर और प्रकृति का खुला हुआ रंगमंच।"[5]

राजस्थानी लोक नाट्य का अंत प्रायः सुखांत होता है, जैसे नरसी मेहता, वज्र मुकुट, राजा हरीशचंद्र, नल दमयन्ती, शंकर केलासी आदि लोक नाट्यों में आशावाद की ज्योति है। लोक जीवन की दृष्टि से उज्वल ऐतिहासिक चरित्रों का भी पर्याप्त चित्रण है। कवियों का कल्पवृक्ष राजा भोज, सत्य पर डटे रहने वाला हठीला हमीर, भरे दरबार में अनुचित संबोधन के लिए सलावत खां को समाप्त करने वाला अमरसिंह, शीश का दान देकर सिद्धराज को झुका देने वाला दानवीर जगदेव पवार आदि लोकवार्ताओं में राजस्थान के पौरुष का रूप देखा जा सकता है।

"राजस्थानी लोकनाट्यों में राजस्थान की लोक, संस्कृति जनता के रीतिरिवाज, लोक विश्वास, ग्रामीणों की मान्यताएँ, प्राचीन मान्यताएँ, जन संस्कृति की विचारधाराएं, आदर्श वीरों के चरित्र मिलते हैं। इनके अभिनय में हमें राजस्थान के जनपद का सच्चा सामाजिक इतिहास मिलता है।"[6]

कठपुतली

भारत के राजस्थान प्रदेश की कठपुतली कला बहुत ही पुरानी और समृद्ध मानी जाती है। कठपुतली के खेलों का संबंध सुदूर इतिहास की गहराइयों से जुड़ा हुआ है। इसमें संदेह नहीं कि कठपुतली का खेल प्राचीन काल से ही लोगों के मनोरंजन का सर्वप्रिय साधन रहा है। भारतवर्ष में आज भी राजस्थान, मालवा, सौराष्ट्र, महाराष्ट्र और मालाबार प्रांत के कुछ भागों में यह परम्परा प्रचलित खेल विद्यमान है। भारतवर्ष के बाहर इसका जो रूप मिलता है, वह निःसंदेह भारतवर्ष के अनुरूप ही है। पश्चिम में आधुनिकता का स्पर्श पाकर अब तो थियेटरों तक में यह खेल सम्मान पाने लगा है, जहाँ लोग प्रवेश पाने के लिए लालायित रहते हैं। कहना न होगा कि कठपुतली का खेल अपनी सर्व-सुलभ विशेषताओं और अपनी चमत्कारिक कला एवं प्रभाव के कारण ही भारत, लंका, चीन, जावा और सुदूर पश्चिम के कुछ देशों में नष्ट न होकर लोक मनोरंजन का माध्यम बना हुआ है। इसका निर्माण व प्रदर्शन भाट जाति के लोग करते आ रहे हैं। भाट जाति नटबाजी तथा नाटक के लिए भी प्रसिद्ध है। यह माना जाता है कि ब्रह्मा से नट की उत्पत्ति हुई और उन्होंने काठ से नाट नाम से काष्ठपुतली आधारित नाट्यों की शुरुआत की। कठपुतलियां

होती तो निर्जीव है लेकिन उसका प्रदर्शन ऐसा होता है जैसे कोई सजीव कलाकार प्रस्तुति कर रहा हो। देश के कई हिस्सों में राष्ट्रीय रोजगार गारंटी योजना के प्रचार-प्रसार एवं ग्रामीणों को जागरूक करने के लिए कठपुतली शो का आयोजन पंचायतीराज विभाग द्वारा किया जाता है। चुनावों के समय कठपुतली द्वारा मतदाताओं को जागरूक करने के लिए उदाहरण भी मिलते हैं। पूर्वी उत्तर प्रदेश के एक स्वयंसेवी संस्था ग्रामीण सेवा संस्थान (पीजीएसएस) द्वारा ग्रामीण क्षेत्रों में संचार के लिए कठपुतली का प्रयोग किया जाता है। इस संस्था के कठपुतली दल गांव में जाकर परिवार का बड़ा आकार, कम उम्र में विवाह, नशाखोरी, स्त्री, बालिका शिक्षा की अत्यन्त निम्न दर को ध्यान में रखकर अपने कार्यक्रम प्रस्तुत करते हैं। कठपुतली के माध्यम से मनोरंजन के साथ ऐसी शिक्षा दी जाती है कि वह मुददे के प्रति जागरूक हो जाते हैं। इस तरह देश के अन्य क्षेत्रों में भी सरकारी एवं गैर सरकारी संस्थाओं द्वारा कठपुतली का उपयोग किया जा रहा है।

कठपुतली का निर्माण

कठपुतली वैसे तो शाब्दिक अर्थ के अनुसार काठ की पुतली है, पर उस के निर्माण में काठ के अतिरिक्त कपड़ा और चमड़ा भी काम में लिया जाता है। कठपुतली लम्बे-चौड़े आकार की गुड़िया की तरह लचकदार पुतली होती है, जो रंगीन वेशभूषा और रूढ़िगत आकार- प्रकार एवं सज्जा के साथ तैयार की जाती है। दिल्ली तथा जयपुर-जोधपुर में कठपुतलियाँ तैयार करने वाले कई पेशेवर लोग रहते हैं। गोल चेहरा, लम्बी मछली की भांति आँखें, तनी भौहें और लम्बे कानों तक खिंचे हुए औंठों को देखकर पुतलियों की खास धज पहचानी जा सकती है। उनमें अधिक वजन नहीं होता। कुछ देशों में प्लास्टर के सांचों का प्रयोग किया जाता है जिससे कि आकृति में समान ताबनी रहे और काम भी जल्दी हो जाए। जोधपुर की पुतलियों में व्यक्तित्व के अनुरूप लम्बाई-चौड़ाई होती है। प्रत्येक पुतली के पीछे सूत्र बांधने के लिए हुक होता है। इन पुतलियों को खराद पर ऊपर से रंग, रोगन लगाया जाता है। राजस्थानी पुतलियों का रंग राजस्थानी शैली से मिलता है। दक्षिणों पुतलियों की बनावट दाक्षिणात्य ढंग की होती है।

कठपुतली के प्रकार एवं पुतली चालनः

प्रमुख रूप से कठपुतली के चार विशिष्ट प्रकार उल्लेखनीय हैं:

1. भारतीय कठपुतलीः जिसे सूत्र द्वारा संचालित किया जाता है। लंका और ब्रह्मा में भी इसी प्रकार की पुतलियों का प्रचार है। इन पुतलियों के अंग एक-दूसरे से जुड़े हुए और लचकदार होते हैं। यह सबसे अधिक प्रचलित प्रकार है।

2. मौजों वाली पुतलीः (ग्लोवडॉल) का प्रचार इंग्लैण्ड में 'पंच और वुडीं', फ्रांस में 'युगनाल' एवं जर्मनी में 'केसपर' के नाम से पाया जाता है।

3. सलाई वाली पुतलीः नीचे की ओर से सलाई द्वारा संचालित की जाती है। तुकिस्तान और चीन में इसका प्रचलन है।

4. चौड़ी पुतलीः- इसका भी एक प्रकार है जो सलाई द्वारा संचालित होती है पर मुख्य पुतली की अपेक्षा उसकी परछाई को ही पर्दे पर दिखाया जाता है। दक्षिण भारत में 'पावाकुथू' के नाम से यह पुतली प्रसिद्ध है।

भारतीय इतिहास या भारत में उद्गम

कठपुतली कला दीर्घकाल से मनोरंजन और शैक्षिक उद्देश्यों से भारत में रुचि की विषय वस्तु रही है। पिशेल कामत कहते हैं कि "हिंदी नाटकों की उत्पत्ति कठपुतलियों के नाट्य से हुई।"[7] ये पुतलियां प्राचीन भारत में ऊन, लकड़ी, भैस के सींग और हाथी दांत की बनी होती थी। यहीं तक नहीं, बोलने वाली पुतलियां भी रंगमंच पर लाई जाती थी जिसका विवरण राजशेखर की'बाल रामायण' में मिलता है। ये पुतलियां डोरे से चलाई जाती थी उन्हें चलाने वाला 'सूत्रधार' कहलाता था। हड़प्पा और मोहन जोदड़ो के उत्खनन स्थलों से सॉकेट युक्त कठपुतलियां मिली है, जिससे कला के एक रूप में कठपुतली कला की उपस्थिति का पता चलता है। कठपुतली रंगमंच के कुछ संदर्भ 500 ईसा पूर्व के आसपास की अवधि में मिले हैं हालांकि, कठपुतली का प्राचीनतम लिखित संदर्भ प्रथम और द्वितीय शताब्दी ईसा पूर्व के आसपास रचित तमिल ग्रंथ शिलप्पादिकार में मिलता है। आज इसका प्रधान संबंध राजस्थान के साथ है, परंतु इसकी परंपरा पुरातन काल से मालवा, सौराष्ट्र, महाराष्ट्र तथा मलाबार प्रदेशों में रही हैं। भारतीय कठपुतली, मौजों वाली कठपुतली, सलाई वाली कठपुतली और चौड़ी कठपुतली- ये चार विशिष्ट प्रकार की कठपुतलियां होती है। राजस्थान में ऐतिहासिक आख्यानों तथा लोककथाओं को इसके माध्यम से प्रदर्शित किया जाता है। राजा अमर सिंह राठौर का शौर्यवर्णन इसका अत्यंत प्रख्यात खेल है, कुंवर सिंह की टेक भी प्रसिद्ध खेल है।"[8]

कला के रूप के अतिरिक्त कठपुतली का भारतीय संस्कृति में दार्शनिक महत्त्व रहा है। भागवत में ईश्वर कोसत्, रज और तम रूपी तीन सूत्रों से ब्रहमांड का नियंत्रण करने वाले कठपुतली के सूत्रधार के रूप में वर्णित किया गया है। इसी प्रकार, भारतीय रंगमंच में कथा वाचक को सूत्रधार या 'सूत्रों का धारक' कहा जाता था। संपूर्ण भारत के विभिन्न भागों में नाना प्रकार की कठपुतली परंपराओं का विकास हुआ, प्रत्येक कठपुतलियों का अपना अलग रूप था। कठपुतली कला ने चित्रकला, मूर्तिकला, संगीत, नृत्य और नाटक के तत्वों को आत्मसात् किया और कलात्मक अभिव्यक्ति के अनूठे अवसरों का निर्माण किया। भारत में कठपुतली कला को व्यापक रूप से चार श्रेणियों में वर्गीकृत किया जा सकता है-

1. सूत्र कठपुतली

2. छाया कठपुतली

3. दस्ताना कठपुतली

4. छड़ी कठपुतली

भारत में कठपुतली नचाने की परंपरा काफी पुरानी रही है। धागे से, दस्ताने द्वारा व छाया वाली कठपुतलियां काफी प्रसिद्ध है और परंपरागत कठपुतली नर्तक स्थान-स्थान जाकर लोगों का मनोरंजन करते हैं। इसके विषय भी ऐतिहासिक प्रेम प्रसंगों व जनश्रुतियों से लिए जाते हैं। इन कठपुतलियों से उस स्थान की चित्रकला, वास्तुकला, वेशभूषा और अलंकारी कलाओं का पता चलता है, जहाँ से वे आती हैं।

राजस्थान की कठपुतली काफी प्रसिद्ध है। यहाँ धागे से बांधकर कठपुतली नचाई जाती है। लकड़ी और कपड़े से बनी और मध्यकालीन राजस्थानी पोशाक पहने इन कठपुतलियों द्वारा इतिहास के प्रेम प्रसंग दर्शाए जाते हैं। अमर सिंह राठौर का चरित्र काफी लोकप्रिय है, क्योंकि इसमें युद्ध और नृत्य दिखाने की भरपूर संभावना है। इसके साथ एक सीटी-जिसे बोली कहते हैं जैसे तेज धुन बजाई जाती है।

ओडिशा का साखी कुंदेई, असम का पुतला नाच, महाराष्ट्र का कलासूत्री बहुली और कर्नाटक की गोम्बेयेट्ट्टा धागे से नचाई जाने वाली कठपुतलियों के ही रूप है। तमिलनाडु की बोम्मलट्टम काफी कौशल वाली कला है, जिसमें बड़ी-बड़ी कठपुतलियां धागों और डंडों की सहायता से नचाई जाती है। यही कला आंध्र प्रदेश और कर्नाटक में भी पाई जाती है।

जानवरों की खाल से बनी, खूबसूरती से रंगी गई और सजावटी तौर पर छिद्रित छाया कठपुतलियां आंध्र प्रदेश, कर्नाटक, ओडिशा और केरल में काफी लोकप्रिय हैं।

दस्ताने वाली कठपुतलियां नचाने वाला दर्शकों के सामने बैठकर ही उन्हें नचाता है। इस किस्म की कठपुतली का नृत्य केरल का पावकथकलि है, ओडिशा का कुंधेइनाच भी ऐसा ही है।

पश्चिम बंगाल का पुतलनाच डंडे की सहायता से रचाई जाने वाली कठपुतली का नाच है। एक बड़ी सी कठपुतली नचाने वाले की कमर से बंधे खंभे से बांध दी जाती है और वह पर्दे के पीछे रहकर डंडों की सहायता से उसे नचाता हैं।

कठपुतली नाच की हर किस्म में पार्श्व से उस इलाके का संगीत बजता है, जहाँ का वह नाच होता है। कठपुतली नचाने वाला गीत गाता है और संवाद बोलता है जाहिर है, इन्हें न केवल हस्तकौशल दिखाना पड़ता है, बल्कि अच्छा गायक व संवाद अदाकार भी बनना पड़ता है। मधुकर के शब्दों में "सूत्रधार को कलाकार, कारीगर, संगीतज्ञ, भाट और प्रमुख रूप से किस्सागो होना पड़ता है, तभी वह कुशलतापूर्वक अपनी कठपुतलियों द्वारा प्रभावित कर सकता है।"[9]

आधुनिक पुतली कला की दशा और दिशा

भारत की प्राचीन और समृद्ध पुतली कला के संदर्भ में आधुनिक पुतली कला के संदर्भ में आधुनिक पुतली कला की स्थिति बेहद निराशाजनक है। दिल्ली में कोई पुतली दल नहीं है। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात

दिल्ली, कोलकाता और मुंबई जैसे बड़े नगरों में कुछ दल बन गए थे। व्यक्तिगत पुतली चालकों और पुतली दलों के साथ ही कलाओं को प्रोत्साहन देने वाली कुछ संस्थाएं पुतली कला को भी प्रोत्साहित करती थीं। अधिकांश काम राजस्थान की सूत्र चालित पुतलियों के क्षेत्र में हुआ। काम की नई सुविधा पाकर राजस्थान से पुतली कलाकारों के लगभग पचास परिवार दिल्ली आकर शहर के सीमांत में आकर बस गए। आज वे सभी अपने पुनर्वासन की लड़ाई लड़ रहे हैं।

दिल्ली में कमला देवी चट्टोपाध्याय की प्रेरणा से भारतीय नाट्य संघ ने कुछ काम शुरू किया। राजस्थानी कठपुतली में परम्परागत पुतली चालकों को लेकर पारम्परिक नाट्य शिल्प के विशेषज्ञ इंदर राजदान के निर्देशन में कुछ नाटक नए विषयों को लेकर किए गए। संगीत और नृत्य के प्रशिक्षण में लगी हुई दूसरी सांस्कृतिक संस्था भारतीय कला केंद्र ने भी पुतली कला में रुचि ली और इसके तत्वावधान में कठपुतली शैली में कुछ नाटक प्रस्तुत हुए। उदयपुर में अपनी संस्था लोक कला मंडल में स्व. देवीलाल सामर ने कठपुतली में महत्वपूर्ण काम किया। उन्होंने एक पुतली दल रखा और उसके साथ कई अंतरराष्ट्रीय पुतली समारोहों में भाग लिया। केंद्रीय संगीत नाटक अकादमी, नई दिल्ली पारम्परिक कलाओं को प्रोत्साहित करने की योजना के अंतर्गत पुतली प्रदर्शन और पुतली समारोह करती रही हैं। अकादमी में भी पुतलियों का काफी बड़ा संग्रह है जिसमें कुछ इसकी दीर्घाओं में लगी हुई हैं।

पुतली कलाकार दादा पदमजी ने श्रीराम सेंटर, नई दिल्ली में काफी काम किया और कठपुतली में प्रयोग किए। उन्होंने मशहूर ईशारा नाम का अपना दल बनाया। कोलकाता में रघुनाथ गोस्वामी का काम उल्लेखनीय एवं सराहनीय है। उन्होंने दंड पुतलियों के क्षेत्र में काम किया। सुरेश दत्ता की सूत्र पुतलियों पर आधारित रामायण बेहद लोकप्रिय हुई।

सभी देशों में कठपुतली कला की प्राचीन परंपरा है और रोम, यूनान मिस्त्र तथा चीन में तो इन पुतलियों ने धर्म प्रचार किया है। वहां कठपुतलियों के माध्यम से धार्मिक और ऐतिहासिक महापुरुषों के जीवन से संबंधित कठपुतली नाटक रचे गए। यह वह समय था जब नाटक का विकास विश्व में कहीं नहीं हुआ था और नाट्य की आवश्यकता हुई तो उसका आरोपण सर्वप्रथम पुतलियों से ही हुआ। आज कठपुतली कला का सिलसिला कहीं नहीं रह गया है, लेकिन उसकी आवश्यकता अनुभव की जा रही है। जैसी मौलिकता इस लोक कला में दृष्टव्य है, रंगमंच की दूसरी कलाओं में नहीं। गांवों में कठपुतली प्रदर्शन देखने वालों की आज भी कमी नहीं है। आवश्यकता इस बात की है कि सरकार एवं समाज इस लोक कला को बना, रखने के सार्थक प्रयास करें और पुतली कला को संरक्षण दें।

साराशतः स्पष्ट है कि राजस्थान के लोकनाट्य कठपुतली का अपना संसार है, जो की कुछ विलुप्त होता सा दिखाई दे रहा है। यह खेद का विषय है कि भौतिकवादी युग में महंगाई और बेकारी धनीमानी, पूंजीपतियों को व्यापार के लिए मुंबई, कोलकाता, अहमदाबाद आदि बड़े नगरों में चले जाने के कारण, विशेष

रूप से सिनेमा के दुष्प्रभाव की वजह से लोक नाट्य की लोकप्रियता बहुत घटी है। शहरों की जनता द्वारा इन्हें पर्याप्त प्रोत्साहन नहीं मिल रहा है, लेकिन ग्रामीण क्षेत्रों में आज भी प्रचलित लोकगाथाओं के कथानकों के आधार पर लोकनाट्य लोकप्रिय है। इस प्राचीन लोककला का संरक्षण जरूरी है। आज भी लोक मनोरंजन के साधनों के पुनरुद्धार के इस काल में कठपुतली के खेल को पुनः प्रतिष्ठा प्रदान करना राष्ट्र के लिए गौरव का विषय होगा।

संदर्भ-सूचीः

1. लोकधर्मीनाट्य-परम्परा, डॉ. श्याम परमार, पृष्ठ 7

2. हिंदी साहित्य का वृहत इतिहास, नागरिक प्रचारिणी सभा, काशी, पृष्ठ 3

3. लोकधर्मी नाट्य-परंपरा, डॉ. श्याम परमार, पृष्ठ 5

4. 'राजस्थानी लोकनाट्य, लेख श्री देवीलाल समर कृत, नया समाज, मार्च, 1952

5. 'राजस्थानी नाट्य परंपरा' लेख श्री गोवर्धन शर्मा कृत साहित्य संदेश, भाग 17, अंक एक और दो, पृष्ठ 67

6. राजस्थान में हिंदी कथा और नाटक साहित्य के सौ वर्ष, नवल किशोर एवं रामचरण महेंद्र, पृष्ठ 48

7. नाटक और रंगमंच, डॉ चंदू लाल दुबे, सम्पादक डॉ. शिवराम माली और डॉ. सुधाकर गोकाककर, पृष्ठ 9

8. वहीं, पृष्ठ 274

9. लोकधर्मी नाट्य परंपरा, डॉ. श्याम परमार, पृष्ठ 86

- रूचि शर्मा

शोधार्थी (पीएच.डी.), हिन्दी विभाग,

दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली